उसका अपना मूल स्वरूप नष्ट हो जाता है। किन्तु मायावादी यह हृदयंगम करने में असमर्थ हैं कि परतत्त्व का अर्थ यह है कि एक धन एक (१+१) भी एक के ही बराबर होता है और एक ऋण एक (१-१) भी एक ही होता है। परब्रह्म का यही परात्पर स्वरूप है।

ब्रह्मविद्या की अल्पज्ञतावश हम इस समय मायाबद्ध हैं और इसीलिए अपने को श्रीकृष्ण से अलग (विछिन्न) समझते हैं। वास्तव में तो श्रीकृष्ण के भिन्न-अंश होने पर भी हम उनसे सर्वथा भिन्न नहीं हैं। जीवों के शारीरिक भेद मायाजन्य हैं, यथार्थ सत्य नहीं हैं; हम सभी का ऐकान्तिक प्रयोजन श्रीकृष्ण की प्रीति का सम्पादन करना है। अतः यह माया का ही प्रभाव है कि अर्जुन अनित्य देहजन्य स्वजन-संबंध को श्रीकृष्ण से अपने नित्य अलौकिक सम्बन्ध से भी अधिक महिमामय मान बैठा है। सम्पूर्ण गीतोपदेश इसी दिशा की ओर लक्षित है कि श्रीकृष्ण का नित्य दास होने के कारण जीव उनसे असम्बन्धित नहीं हो सकता, वस्तुतः जीव को श्रीकृष्ण से विछिन्न समझना ही माया है। परब्रह्म के भिन्न-अंश के रूप में जीवों को एक विशिष्ट प्रयोजन परिपूर्ण करना है। उस लक्ष्य को भुला देने से ही वे अनादि काल से मानव, पशु, सुर आदि देहों में भटक रहे हैं। इन शारीरिक भेदों का एकमात्र कारण है चिन्मयी भगवद्भक्ति का विस्मरण। परन्तु कृष्णभावनामृत के सेवन से चिन्मयी भगवत्सेवा में निष्ठ हो जाने पर इस माया से सद्योमक्ति प्राप्त हो जाती है। यह निर्मल ज्ञान उस सद्गुरु से मिलता है, जो जीव और श्रीकृष्ण को बराबर समझने के भ्रम से मुक्त है। पूर्णज्ञान से यह बोध होता है कि भगवान् श्रीकृष्ण जीवमात्र के परमाश्रय हैं। इसी आश्रय को त्याग देने पर जीवों को यह भ्रान्ति हुआ करती है कि उनका श्रीकृष्ण से कोई स्वरूपभूत सम्बन्ध नहीं है; इस प्रकार वे माया के बन्धन में आ जाते हैं। विविध प्रकार की योनियों में जीवों की आत्मबुद्धि हो जाती है, जिससे वे श्रीकृष्ण को भूल बैठते हैं। परन्तु जब ऐसे मायाबद्ध जीव कृष्णभावना में पहुँच जाते हैं तो समझना चाहिए कि ये मुक्तिपथ पर अग्रसर हो रहे हैं। जैसा श्रीमद्भागवत में कथन है: **मुक्तिर्हित्वान्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः।** 'मुक्ति का अर्थ श्रीकृष्ण के नित्य दास के रूप में अपने स्वरूप (कृष्णभावनामृत) में स्थित हो जाना है।'

4/5

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।।३६।।

अपि चेत्=यदि; **असि**=(तू) है; **पापेभ्यः**=पापियों से; **सर्वेभ्यः**=सब; **पापकृत्तमः**=सर्वाधिक पापी; **सर्वम्**=सम्पूर्ण; **ज्ञानप्लवेन**=ज्ञान की तरणी से; **एव**=निःसन्देह; **वृजिनम्**=(पापकर्म रूप) दुःखसागर से; **संतरिष्यसि**=पूर्णतया तर जायगा।

अनुवाद

यदि तू सब पापियों से भी अधिक पाप करने वाला है, तो भी ज्ञानरूपी तरणी द्वारा इस दुःखसागर से अच्छी प्रकार तर जायगा।।३६।।